'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १४६ | वाराणसी, शनिवार, १९ दिसम्बर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

धगवाल (जम्मू-कश्मीर) १९-९-'५९

हमारी काशी विश्वनाथ यात्रा

हमारी यात्रा बारिश में, ठंड में और धूप में भी चलती है। यह नित्य-निरन्तर की काशी यात्रा है। इस गाँव का नाम हमारे लिए 'काशी' है। कल के गाँव का नाम भी हमारे लिए 'काशी' था। कल हम 'काशी' में थे, आज 'काशी' में हैं और आनेवाले कल भी हम 'काशी' ही जायँगे। यह हमारी 'काशी-यात्रा' है और आप हैं हमारे 'विश्वनाथ'।

बन्दे का धर्म

भगवान कहाँ रहता है? कोई कहता है काशी, कोई कहता है बद्री, कोई कहता है अमरनाथ। आखिर भगवान है कहाँ? हम कहते हैं, सिर नीचे करो, तब भगवान दीखेगा। यहाँ अपने हृदय में, दिल में भगवान रहता है। दूसरे के हृदय में भी वह है। भगवान 'हृदयस्थ' है। याने उसकी रहने की जगह हृदय है। जहाँ प्रेम, क्षमा, शांति, करुणा, दया, सत्य, निर्भयता है, वहाँ भगवान है। सामने कोई मूर्ति खड़ी करते हैं, उसमें भी भगवान है। पहाड़ में, पेड़ में, पत्थर में, नदी-नाले में, समुद्र में, बिल्ली में, पक्षी में, घास-फूस में, गली-कूची में भी वही हैं। लेकिन भगवान सबसे अच्छी जगह—जहाँ वे हमेशा विराजमान रहते हैं—वह है हृदय। हमारे आसपास के भाई-बहनों से प्यार किया जाय, इससे बढ़कर कोई भगवान की पूजा नहीं है और न कोई भक्ति ही है। सबकी खिदमत के लिए बंदा तैयार है—ऐसा होना चाहिए। यही बंदे का काम है। कोई डूब रहा हो तो उसे बचाना, बीमार की सेवा करना, पगचंपी करना और प्यार के दो शब्द बोलना बंदे का धर्म है। पड़ोस में छोटा लड़का बीमार हो तो उसकी प्यार से सेवा करें। ऐसी सेवा से भगवान खुश होते हैं।

बेरोजगार और बेजमीन की सेवा

बेरोजगार की सेवा कैसी होगी? उसे काम-धंधा देने से होगी। बहन हो तो उसे चरखा देंगे। उसके सूत का कपड़ा गाँव-वाले पहनेंगे तो गाँववालों ने उसकी सेवा की, ऐसा होगा। कोई बेजमीन है और वह काम करना चाहता है तो मेरे पास जो थोड़ी जमीन है, उसका एक हिस्सा बेजमीन को देने से ही उसकी सेवा होगी। इस तरह अपने गाँव के बेजमीन की सेवा जमीन देकर, बेरोजगार की सेवा रोजी देकर करनी चाहिए। किसीको मकान बनाने में मदद करेंगे। हमारी तरफ से ईंटें, चूना देंगे। इस तरह सबकी सेवा के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।

भक्ति का प्रकार

हरिजन, ब्राह्मण, बुनकर कोई भी हो, हम सब भाई-भाई हैं, यही खयाल रखना चाहिए। हमारी सबकी बड़ी पंगत है। हम सब मिलकर प्यार से भगवान का नाम लेंगे। हमेशा गाँव की भलाई सोचेंगे। गाँव के सुख-दुःख की चर्चा करेंगे। किसे क्या दुःख है, यह पूछेंगे और उसकी मदद करेंगे। एक कुँआ है, उसमें से एक बाल्टीभर पानी हमने ले लिया तो उसमें इतना गड्ढा नहीं होता। चावल के ढेर में से एक सेर चावल उठा लें तो गड्ढा दीखेगा। चार-पाँच चावल के दाने वह गढा भरने के लिए जायँगे। क्या वजह है इसकी? यही कि कुँए के पानी की बूँदों में आपस-आपस में प्यार होता है। इसलिए गढ़ा मिटाने में पानी की बूँदें दौड़ जाती हैं। चावल के दाने ऐसे बेवकूफ होते हैं कि वे दौड़ते नहीं हैं। उनमें आपस में प्यार नहीं होता। गाँव का समाज पानी जैसा होना चाहिए। किसी एक का दुःख हो तो वह हम सबको बाँट लेना चाहिए। हम लोग कहते हैं कि "उसका नसीब है! वह भोगता रहेगा।" अरे मूर्ख! इतने निठुर बनोगे तो अगले जन्म में तुम्हें दुःख मिलेगा। एक का बोझ सबको उठाना चाहिए। सारा गाँव मुहब्बत से, एक कुनबे के समान रहे तो अच्छा है। सबपर प्यार करो। प्यार ही परमेश्वर की पूजा है। यही भक्ति का प्रकार है।

प्यार करने का तरीका

गाँव में कच्चे माल का पक्का माल बनायेंगे और फिर वही गुड़, तेल आदि हम इस्तेमाल करेंगे तो गाँव के लोगों को धंधा मिलेगा। गाँव का पैसा गाँव में ही रहेगा। गाँववालों पर प्यार करना है तो उनकी पैदा की हुई चीजें खरीदनी चाहिए। जमीन का हिस्सा बेजमीन को देना चाहिए। गाँव में एकाध एकड़ में वनस्पती का बगीचा लगायें तो ताजा जड़ी-बूटी का रस मिलेगा। बीमारी आगे नहीं बढ़ेगी। आज थोड़ी बीमारी होती है, परन्तु

ऐसा इन्तजाम न होने से वही बढ़ती है और फिर दवा लेने के लिए शहर में जाना पड़ता है। यहाँसे जम्मू जाना पड़ेगा, उसमें वख्त और पैसा भी जायगा, शरीर कमजोर बनेगा, तकलीफ होगी। मुमकिन है कि बीमारी भी दुरुस्त न हो। इसलिए ऐसे वनस्पती के बगीचे की गाँव में सख्त जरूरत होती है। उसी तरह से गाँव में किसीके भी घर शादी होगी तो खर्चा सारा गाँव करेगा। शादी तय करने का काम घरवालों का और खर्चा करने का काम सारे गाँववालों का होगा। हर घर से उसमें पैसा लगेगा। शादी के लिए हर घर में बैंक होगी।

यह सारा प्यार करने का तरीका है। ऐसा प्यार होगा तो आप लोगों के घर में भगवान श्रीकृष्ण आकर रहेंगे। जो आनंद, खुशी गोकुल वृन्दावन में थी वह आपके गाँव में होगी। यह आपके गाँव में होगा तो आपका गाँव खुश होगा। गाँव खुश तो दुनिया खुश! इसलिए हम एक ओर 'जय-जगत' कहते हैं और दूसरी ओर 'जय-ग्रामदान'। ●●●

प्रार्थना-प्रवचन

गांधीधाम (कच्छ) २८-११-'५८

सिंधी भारत में विश्वमानुषता का अवतार करें

[यह शहर सिंधियों की बस्ती होने के कारण यह प्रवचन हिन्दी में ही दिया गया।—संपादक]

आप लोगों के दर्शन से मुझे बहुत आनन्द होता है। यहाँ इतनी दूर पैदल यात्रा में पहुँच जाना मेरे लिए बहुत आसान नहीं था। उसमें बहुत समय बीता। आगे मुझे राजस्थान, पंजाब वगैरह में जाना है। यह स्थान हिन्दुस्तान का बिलकुल एक सिरा ही है। लेकिन दुखायलजी का प्रेम मैं टाल नहीं सका और उनके प्रेम से खिंचकर आप लोगों के दर्शन के लिए यहाँ आ पहुँचा हूँ।

पुरुषार्थियों की सेवा में

दस साल पहले गांधीजी के प्रयाण के बाद पुरुषार्थी भाइयों की सेवा में मैंने कुछ समय बिताया था। वह समय था १९४८ और १९४९। इन दो वर्षों में पुरुषार्थी भाइयों की सेवा के निमित्त मैं हिन्दुस्तान में बहुत-सी जगह घूमा। तब यह मंडल नहीं बना था। उस समय सिंधियों की सबसे बड़ी बस्ती कल्याण में ही थी। मैं कल्याण, पूना, बम्बई, अजमेर, जयपुर, अलवर, दिल्ली, इंदौर और नागपुर भी गया था। इन सिंधी और पंजाबी भाइयों के दर्शन के लिए मुझे बिहार तक जाना पड़ा। उन दिनों ये हमारे पुरुषार्थी भाई बहुत दुःखी थे। उनकी बातें सुन, उनके दुःख सरकारी अधिकारियों तक पहुँचाना और उन्हें हर सम्भव राहत दिलाना मेरा काम रहा। उसमें करीब-करीब मेरे दो, पौने दो साल बीते। घूमा तो बहुत, पर उस हिसाब से बहुत कुछ सेवा नहीं कर सका। क्योंकि वह मसला ही कुछ कठिन था। लोग दुःखी थे। स्वराज्य नया ही हासिल हुआ था। जैसे चन्द्र या सूर्य को ग्रहण लगता है, वैसे ही स्वराज्य को पुरुषार्थी समस्या का एक ग्रहण ही लग गया था। बहुत मुश्किल मामला था। सरकार की हालत भी बहुत कठिन थी। जिधर देखो, उधर दुःख ही दुःख पड़ा था। इसलिए मैं बहुत कुछ नहीं कर सका। उसका मुझे बहुत दुःख था। लेकिन कोई चारा नहीं था। मेरी ताकत के बाहर की बात थी। फिर भी सिंधी भाइयों ने तबसे आज तक मुझे अपना सेवक माना और वे मुझपर बहुत प्रेम रखते हैं। यह उनके दिल का बड़प्पन है। यह उनका मुझपर बहुत उपकार है।

काम कम और दाम ज्यादा

कभी-कभी कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर हमारी बात नहीं सुनता। भक्तों की बड़ी कठिन परीक्षा लेता है। लेकिन मेरा अनुभव इससे भिन्न है। मैंने उसकी जितनी भक्ति, जितनी सेवा की, उससे बहुत ज्यादा कृपा उसने मुझपर की है। मुझे बहुत ज्यादा कोशिश नहीं करनी पड़ी। जितनी योग्यता मेरी थी, उससे बहुत ज्यादा ही मुझे मिला। मेरा यही अनुभव पुरुषार्थियों की सेवा में भी रहा है। मैं उनकी सेवा बहुत ज्यादा नहीं कर सका, पर मैंने उनका बहुत प्रेम पाया है। उन्होंने देख लिया कि यह शख्स कमजोर है, यह इसके हाथ की बात नहीं। फिर भी इसके दिल में सच्चाई, मुहब्बत और हमदर्दी है। सच्ची हमदर्दी प्रकट करने पर भले ही दुःखियों का दुःख-निवारण न हो तो भी उन्हें तसल्ली मिलती है। उनके दुःख में हमदर्दी दिखानेवाला कोई है, यह देख उन्हें समाधान होता है। आखिर मनुष्यों को संकटों से मुक्त करनेवाला परमेश्वर ही है। किन्तु जो हिम्मत और प्रेरणा देता है, उसपर प्यार होता है। वह प्यार मैं भूल नहीं सकता। उन दिनों हमारे दुखायलजी मेरे साथ घूमते थे। वे मुझे जहाँ-तहाँ ले जाते थे। कभी-कभी मैं स्वतन्त्र जाता था तो कभी उनके बुलावे पर पहुँच जाता था। तबसे उनकी हमारी जानपहचान है।

सरकारी भरोसे का भ्रम

चन्द दिन मैंने यह काम किया। उसके बाद आप जानते हैं कि हिन्दुस्तान में मैं अहिंसा-शक्ति की खोज में घूमता रहा। बापू की मृत्यु के बाद मैं पंजाब में पुरुषार्थियों के झगड़े के लिए पहुँचा था। वे पुरुषार्थी भाई पाकिस्तान से आये थे। उनमें कुछ हरिजन थे और वे जमीन माँगते थे। पंजाब सरकार कहती थी कि पाकिस्तान में जितनी जमीन होगी, उतनी ही हम दे सकते हैं। जिनकी पाकिस्तान में जमीन न हो, उन्हें हम जमीन नहीं दे सकते हैं। फिर हमने उसपर प्रेम और समझाने का जोर लगाया। आखिर पंजाब सरकार ने कबूल किया कि कुछ जमीन वह हरिजनों को देगी। शुक्रवार का वह दिन था, जब पंजाब सरकार ने वादा किया था। उस समय राष्ट्रपति भी हाजिर थे और उनके सामने ही यह वादा हुआ। उस दिन प्रार्थना-सभा में मैंने इसके लिए पंजाब सरकार को धन्यवाद भी दिया। किन्तु उसके एक-आध महीने के बाद हमें पता चला कि पंजाब सरकार अपना वादा पूरा करने में असमर्थ है। इससे हरिजन बहुत दुःखी हुए। रामेश्वरी नेहरू भी, जो उस समय हरिजनों के काम में थीं, बहुत दुःखी हुईं। उन्होंने मुझसे पूछा कि हरिजन सत्याग्रह की सोचते हैं तो क्या उन्हें उसकी सलाह दी जाय? मैंने कहा, हरिजनों की माँग में सत्य तो है, किन्तु अभी हम उसके लिए आग्रह नहीं करेंगे। क्योंकि देश की आज की हालत में वह उचित नहीं होगा। इस

तरह उस समय मैंने उनका सत्याग्रह रुकवा दिया। लेकिन तबसे हमारे मन में यह एक सदमा रहा कि हम कुछ नहीं कर पाये।

जन-शक्ति की खोज में

हिन्दुस्तान में अहिंसा-शक्ति की खोज में हम घूमते रहे। घूमते-घूमते दैववशात् यों ही हैदराबाद जाना हुआ। वहाँ तेलंगाना में हरिजनों ने जमीन माँगी। उनके पास कोई काम नहीं था। उस समय हमें यह पंजाब का पूरा चित्र याद आ गया। पंजाब सरकार की वादाखिलाफी याद आयी और हमें लगा कि अगर हम हर गाँव में जमीन की माँग करेंगे तो मुश्किल न होगी। इसलिए जनता से ही ताकत पैदा हो तो अच्छा है। क्योंकि शक्ति सरकार नहीं, शक्ति जनता है। वह मानवों के हृदय में भरी पड़ी है, उसे देखना चाहिए। यह सोचकर हमने गाँववालों से जमीन की माँग की। तत्काल एक शख्स ने उसे मंजूर किया और सौ एकड़ जमीन दान दे दी। उसी दिन से भूदान-यज्ञ शुरू हुआ। उस घटना को हमने ईश्वर का इशारा ही समझा। उसी दिन मेरे मन में विचार उठा कि कुल हिन्दुस्तान में तीस करोड़ एकड़ जमीन और एक करोड़ लोग भूमिहीन हैं। उन्हें भूमि दिलाने के लिए पाँच करोड़ एकड़ की जरूरत है। क्या इतनी जमीन मुझे मिलेगी? जमीन माँगता फिरूँगा तो क्या लोग मुझे वह देंगे? पुनः अन्दर से एक आवाज आयी कि "तू ऐसे सवाल क्यों पेश करता है? ईश्वर, अहिंसा और प्रेम पर भरोसा हो तो काम शुरू कर दो।" इसे मैं ईश्वर की आवाज ही मानता हूँ, इसके सिवा दूसरा कोई स्पष्टीकरण मेरे पास नहीं है। आखिर मेरे पास था क्या? न सत्ता थी, न संस्था और न व्यवस्था ही। दूसरा कोई भरोसा नहीं था, इसलिए मैंने भगवान का ही नाम लेकर अपनी यात्रा शुरू कर दी, जो अबतक सतत जारी है। उसी यात्रा के सिलसिले में गुजरात में मेरा आना हुआ और आज इस कच्छ में आपकी सेवा में हाजिर हुआ हूँ।

गीता-प्रवचन हर सिंधी के हाथ में रहे

अभी दुखायल ने आपको "गीता-प्रवचन" की जानकारी दी। मेरा एक सिंधी लड़का "द्वारको सुंदराणी" है। नाम के अनुसार ही वह सुंदर है। उसका कुल जीवन सेवामय है। उसके हाथों सुंदर सेवा हो रही है। मेरे साथ पवनार आश्रम में रहा है। वहाँ उसने मराठी सीख ली और मराठी गीता-प्रवचन का सिंधी भाषा में बहुत सुंदर अनुवाद किया है। उस पुस्तक की प्रस्तावना में मैंने लिख दिया है कि सिंधी भाइयों की जो सेवा मैं करना चाहता था, वह नहीं कर सका, इसलिए मेरे मन में दुःख भी था। किन्तु मैं अब आशा करता हूँ कि इस सिंधी गीता-प्रवचन से उनकी सच्ची सेवा होगी। मुझे बहुत खुशी हुई है कि हजारों सिंधी भाइयों के पास वह पुस्तक जा रही है। सिंधियों की छोटी-सी जमात है। फिर भी सिंधी गीता-प्रवचन के चार-पाँच संस्करण हो गये हैं। मैं चाहता हूँ कि हर सिंधी भाई के हाथ में यह पुस्तक रहे।

प्रेम के लिए मैंने सिंधी सीखी

मैं सिंधी भाइयों का कुछ खास काम, उनकी कोई खास सेवा नहीं कर सका, यही सोचकर मैंने सिंधी भाषा का भी अभ्यास किया है। अगर आप मेरी परीक्षा न लें तो मैं सिंधी में भी बोल सकता हूँ, पढ़ भी सकता हूँ। लेकिन अगर आप मेरी परीक्षा लें तो मैं फेल ही हो जाऊँगा। मैंने सोचा कि सिंधी भाषा का अध्ययन भी एक सेवा करने का, दिल जोड़ने का तरीका है। अवश्य ही इस अध्ययन-पद्धति से आपके सामने फेल होने का मुझे डर है। फिर भी मेरे दिल का समाधान हो ही गया है। कुछ गुजराती, कुछ संस्कृत, कुछ मराठी और हिंदी भाषा का मेरा अध्ययन है और उन्हें मैं बोल भी सकता हूँ, लेकिन बाकी की जो भाषाएँ मैंने सीखीं, वह ज्ञान के लिए नहीं, प्रेम के लिए सीखी हैं। यह सिंधी भाषा मैंने प्रेम के लिए ही सीखी है।

सारे भारत को अपना मानो

शायद आपको मालूम नहीं कि सिंधी भाषा का अध्ययन करते समय मुझे बाजार में एक व्याकरण की पोथी मिल गयी जिसमें नागरी लिपी में सिंधी और अंग्रेजी लिखा था। तब मेरे खयाल में आया कि अगर हम नागरी का आग्रह रखें तो सिंधी भाषा का अच्छी तरह प्रचार हो सकता है। आगे चलकर हिन्दुस्तान में यह भाषा बहुत चल सकती है। संस्कृत, जैनों का मागधी साहित्य, पाली का साहित्य, मराठी और हिन्दी साहित्य। इस तरह बहुत-सा साहित्य नागरी में है। ७०-८० साल पहले के अंग्रेजी में लिखे उस व्याकरण में मुझे एक कहावत मिली। ठीक-ठीक तो याद नहीं, पर जैसा याद है, वैसा ही बोलता हूँ—"सिंध खादी जोगन और कच्छ खादी ठोगन।" याने सिंध प्रान्त को खा लिया योगियों ने और कच्छ को ठगों ने। सिंध में तरह-तरह के योगी आते थे। वह प्रान्त बड़ा सुखी था। सिंध में धर्मप्रेमी और बड़े श्रद्धालु भाई रहते थे। लेकिन याद रखो कि अब तुम लोग कच्छ में आ गये हो और इस कच्छ को ठगों ने खा लिया है। इसलिए यह मत सोचो कि एक ऐसा उत्तम स्थान आपको मिल गया है। इसलिए अब दुनिया को देखना ही नहीं है और यहीं रहना है। वास्तव में सारा भारत आपका है और सारा विश्व आपका है। हिन्दुस्तान का कोई ऐसा प्रदेश नहीं, जहाँ सिंधी न पहुँचे हों। जहाँ भी मैं जाता हूँ, वे मुझसे मिलने आते हैं। मद्रास से लेकर आसाम तक, बिहार में भी वे फैले हैं। वे भारत से बाहर भी जाते हैं। सिंधियों की यह विशेषता है कि उन्होंने कभी भीख माँगना पसंद नहीं किया। हमेशा काम करना ही पसंद किया है। थोड़ी ही पूँजी क्यों न हो, व्यापार करते हैं। ज्यादा मुनाफे की जरूरत नहीं। इस तरह गुजरात में आकर वे बस गये। गुजरात में तो व्यापारी रहते हैं। गुजराती व्यापारियों के बीच बसकर भी सिंधियों ने उनका प्यार संपादन किया। यह एक बहुत बड़ा गुण है, इसमें शक नहीं। उन्होंने कभी किसीके साथ झगड़ा नहीं किया। हमेशा नम्र रहे। उद्योगशीलता के साथ नम्रता भी रखी है। सभी स्थानों में मैंने यही देखा। मैं यहाँके सिंधियों से कहना चाहता हूँ कि सिर्फ कच्छ हमारा है, ऐसा मानोगे तो उसका यही अर्थ हो जायगा कि भारत हमारा नहीं है। इसलिए ठगो मत। कच्छ हमारा है और कुल भारत भी हमारा है। ऐसा कहोगे, तभी आपकी और भारत की भी इज्जत बढ़ेगी।

सुख-दुःख में समत्व बना रहे

आज मैं आपको क्या दिलासा दूँ? कुछ अर्जियाँ यहाँके भाइयों ने मेरे सामने पेश की हैं। उनमें उन्होंने अपने कुछ दुःख प्रकट किये हैं। दुःख तो होता ही है। सुख और दुःख ये एक-दूसरे के भाई हैं, दुश्मन नहीं। सुख से दुःख को और दुःख से सुख को कोई पीड़ा नहीं होती। दोनों का एक-दूसरे पर बहुत प्रेम है। दोनों मिलकर एक पूरी चीज बन जाती है। केवल सुख और केवल दुःख उचित नहीं है। सुख के बाद दुःख, दुःख के बाद सुख

मनुष्य को प्राप्त हो ही जाता है। दुःख में हमें अपने मन का समत्व नहीं खोना चाहिए और सुख में भी नहीं खोना चाहिए। हमें सुख-दुःख से परे की चीज सेवा करके छूटना चाहिए।

यह दिल जोड़ने का काम

सुख और दुःख जो मिले, सब बाँटकर ही खायें। सुख बाँटने से बढ़ता है और दुःख बाँटने से घटता है। इसलिए सुख है तो सुख बाँटेंगे, दुःख है तो दुःख बाँटेंगे। अभी तक हमें पचास लाख एकड़ जमीन छह लाख लोगों ने दी है। उन छह लाख लोगों में छोटे-छोटे लोगों ने बहुत दान दिया है। बड़े-बड़े लोगों ने भी दिया है, लेकिन उनकी संख्या कम है। किन्तु दिल्लीवाले कहने लगे कि "यह तो जमीन के टुकड़े हो रहे हैं। यह अच्छा नहीं, इससे उत्पादन घटेगा।" मैंने कहा—"मैं जमीन के टुकड़े करने का नहीं, दिलों को जोड़ने का काम कर रहा हूँ। आज दिल टूटे हैं, वे एक हो जायँगे जुट जायँगे तो सारी भूमि जुट जायगी, यह विश्वास रखो।"

सुख-दुःख से परे सेवा का ही मैं मार्गदर्शक

हमपर दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि बाबा का काम वैसे तो अच्छा है, प्रेम का है, लेकिन बनता क्या है? उससे गरीबी का बँटवारा होता है। "पावर्टी" डिस्ट्रीब्यूट होती है। हमें तो उत्पादन बढ़ाना है, श्रीमान बनना है। इसके बाद बाँटना चाहिए। इसपर मैं कहता हूँ कि मुझे सुख और दुःख दोनों बाँटना है। बाँटने से दुःख घटता है और सुख बढ़ता है। इसीलिए जो भी हो, बाँटना चाहिए। हमें सिर्फ सुख ही चाहिए, ऐसा मत समझो। मनुष्य को थोड़ा सुख चाहिए और थोड़ा दुःख भी। तभी जीवन में उसका मन शान्त रहता है, जागृत होता है और वह परमेश्वर के पास पहुँचता है। सिर्फ सुख होना खतरे में रहना है, वैसे दुःख भी रहना खतरे का है। इसीलिए जैसे दुःखियों के लिए हमें हमदर्दी होती है, वैसे ही सुखियों के लिए भी होनी चाहिए। ऐसा लगना चाहिए कि हमारा दोस्त बेचारा सुख में है तो उसे सुख से बचाना चाहिए। उससे कहना चाहिए कि दोस्त, इतने सुख में पड़ना अच्छा नहीं, इसमें तुम्हारा भला नहीं है। इसलिए मैं आपको सुख का रास्ता नहीं दिखाऊँगा। हमें सुख-दुःख से बचकर उनसे परे जो सेवा होती है, उसे करके छूटना है। मनुष्य-जीवन में दोनों की जरूरत है। वे दोनों मित्र हैं। आज दोनों आते हैं तो आने दो, पर उन्हें बाँटकर खाओ, वही जीवन का सार है।

विश्व के सारे मानव एक

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप सिंध प्रान्त छोड़कर आये हैं। "हम सिंधी दस लाख हैं", अब यह उत्तर नहीं चलेगा। अब कम-से-कम यह कहना होगा कि हम सैंतीस करोड़ हैं, हम भारतीय हैं। मैं आपको आगाह करना चाहता हूँ कि आगे चलकर यह उत्तर भी नाकाफी होगा। आनेवाली दुनिया में "जय-हिन्द" की पुकार कम साबित होगी। अब तो "जय-जगत" की ही पुकार चलेगी और यही विचार मैं रख रहा हूँ। हम इन्सान हैं, हम सब एक हैं, समान हैं, यही भावना अब रहनी चाहिए। मानव-धर्म का यह कार्यक्रम नया है, पर शब्द पुराना है। यह हमारे ऋषियों की खूबी है। उन्होंने जिन शब्दों का उपयोग किया है, उनमें हम नया अर्थ भर सकते हैं। इसलिए मैं आपको अपने पुरुखों का एक शब्द बताता हूँ—"विश्वमानुष"। यह शब्द हमारे अति-प्राचीन ग्रंथ में, वेद में आता है। हम सिंधी हैं, यह आप भूल जाइये। सब इन्सान एक हैं, मानव-धर्म हमें सीखना है। इसलिए सुख और दुःख दोनों चाहिए और दोनों को हम बाँटें। किसी भी धर्म, पंथ या जाति का भाई हो, हमारा है, ऐसी भावना होनी चाहिए। आज दुनिया नजदीक आ रही है, इसलिए हम सारे विश्व के मानव एक हैं, ऐसा मानना चाहिए। यही पैगाम सुनाने मैं यहाँ आया हूँ।

विश्वमानवता के प्रयोग

यह जमाने का पैगाम है। भूदान द्वारा मैं आपको वही सुनाने आया हूँ। भूदान, ग्रामदान, सर्वोदय आदि ये सब प्रयोग हैं। विश्व-मानवता प्रकट करने के लिए प्रयोग के तौर पर मैं यह काम कर रहा हूँ। अब हमारा जीवन व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक होना चाहिए। विज्ञान के इस जमाने में अब व्यक्तिगत साधना नहीं चलेगी, सामूहिक साधना ही करनी होगी। संकल्प भी सामूहिक करना होगा। यह संदेश पहुँचाने के लिए ही मैंने जमीन का सवाल, संपत्ति-दान आदि का निमित्त-मात्र एक काम उठा लिया है और वही लेकर यहाँ पहुँचा हूँ।

कमजोरों से काम लेना भगवान की लीला

आज मैं जरा कम बोलना चाहता था, क्योंकि आज कुछ थकान भी मुझे आयी है। लेकिन इतने वर्षों के बाद प्रथम इतनी दूर आया हूँ। शायद आपकी यह पहली और आखिरी भी मुलाकात हो। परमेश्वर ने यह संदेश पहुँचाने का काम कमजोरों पर ही सौंपा है। परमेश्वर हमेशा ऐसी ही बदमाशी करता है। वह ऐसा विलक्षण नाटक करनेवाला है। आखिर दुनिया को तकलीफ देकर उसे क्या मजा आता है? वह छोटों के दिल बड़े बनाता है, ताकि उन्हें तकलीफ हो और बड़ों के दिल छोटे बनाता है, ताकि उन्हें भी तकलीफ हो। इतिहास में हम देखते हैं, राम के जमाने में भी बंदरों ने काम किया। देव, मानव सब अलग रहे। यही चीज कृष्णावतार में थी। कृष्ण का काम ग्वाल-बालों ने किया। इस तरह कमजोरों से काम लेना, यह परमेश्वर का काम है। यह उसकी लीला है, खेल है। मैं जानता हूँ कि मैं बहुत कमजोर हूँ। ऐसे आदमी को परमेश्वर घुमाता है, उसे जरा तकलीफ होती है तो उसे खुशी भी होती है। अगर दूसरा कोई बलवान शख्स होता तो वह यह सात-आठ साल का काम सालभर में ही कर देता। फिर भी अब उसने मेरे जैसे कमजोरों पर ही यह काम सौंपा है।

दुखायल की साधना

इसी तरह आप लोगों में इस दुखायल पर भी उसने यह काम सौंपा है। दुखायल ने अपना नाम 'दुखायल' ही रख लिया है। अब वह कब "सुखायल" बनेगा, मालूम नहीं। लेकिन वह शख्स भूदान में आया, तबसे लगातार वैसे ही काम करता है, जिस तरह कि मेरा काम चलता है। आसाम से मद्रास तक जगह-जगह जाकर, मस्त होकर गाने सुनाता है। वैसे मद्रास में हिन्दी समझनेवाले बहुत कम होते हैं तो भी मैंने देखा कि वहाँ भी उसके हिन्दी गाने चलते हैं और वह लोगों का प्यारा बना है। दुनियाभर हवा फैलाने में उनके गीतों का उपयोग हुआ है। वह 'धरती-माता' का अखबार चलाता है। वह अखबार हर सिंधी व्यक्ति के पास होना चाहिए। क्योंकि वह अखबार भूदान, ग्रामदान, सर्वोदय, विश्व-शांति और विश्वमानवता का संदेश-वाहक है। मैं नहीं चाहता कि इसके प्रचार के लिए दो-चार साल लग जायँ, आप सब लोग उसे मदद करें।

आप सिंधी लोगों की जमात दस लाख की है। शक्कर दूध में घुल-मिल जाती है और दूध बहुत मीठा बन जाता है। यह पूछने पर कि क्या पीते हैं? हम कहते हैं कि दूध पीते हैं। इसी तरह आपको आस-पास के लोगों में घुल-मिल जाना चाहिए। उन्हें शक्कर बनकर छिपकर मिठास पहुँचानी चाहिए। इस तरह बरताव करने पर आप वह काम कर सकेंगे, जो सिंध में कभी न कर सकते। आज आप भारत में आये हैं। इसलिए भारत में वह चीज आपको मिलेगी, जो सिंध में नहीं मिलती थी।

पाकिस्तान को प्रेम से जीतना कठिन नहीं

आज वहाँकी क्या हालत है? अयूबखान का राज चल रहा है। सिंध, पंजाब सारा प्रदेश दुःखी है। सब डरे हुए हैं। डरानेवाला कहता है कि सबकी भलाई के लिए ही मैं डरा रहा हूँ। संभव है कि वहाँके लोगों की भलाई भी होती हो। भाई, मैं तो वहाँ गया नहीं, इसलिए कह नहीं सकता। लेकिन वहाँ आज बड़ी दुर्दशा है। किन्तु हिन्दुस्तान में अगर हम दुनिया को यह दिखा दें कि यह हिन्दुस्तान किसी प्रकार के जाति-भेद, धर्म-भेद, भाषा-भेद, पक्ष-भेद नहीं मानता तो कल वह दुनिया को जीत लेगा। ऐसी ताकत पैदा करेगा कि उसके सामने दुनिया को झुकना पड़ेगा। दुनिया झुकेगी और दुनिया की जीत होगी हिन्दुस्तान की जीत के साथ। याने भारत में विश्व-मानुषता का अवतार होगा। तब पाकिस्तान को भी हृदय से जीतना कठिन नहीं होगा। मैंने यह आशा नहीं छोड़ी है कि पाकिस्तान और हम मिलकर जैसे पहले एक थे, वैसे ही एक होकर रहेंगे। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि राज एक होगा। दिल एक हो जायगा। क्योंकि इसके आगे विज्ञान के जमाने में राज्य तो खत्म हो जायगा।

अब लोकनीति ही चलेगी, राजनीति नहीं

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का राज्य एक हो जाय, यह तो अलग ही बात है। राज्य ही खत्म होगा। अब तो लोकनीति चलेगी, राजनीति खत्म हो गयी, ऐसा ही समझो। अभी मैं सुन रहा था इजराईल बड़ा सुन्दर देश है। बड़े उमदा लोग वहाँ रहते हैं। खूब स्फूर्ति से काम करनेवाले लोग हैं, लेकिन सुनानेवाले ने मुझे सुनाया कि पहले वहाँ सत्रह राजनीतिक पार्टियाँ थीं। अब वहाँ सिर्फ बारह पार्टियाँ बच गयी हैं। प्रभु की कृपा ही है कि बारह पार्टियाँ बची हैं। विज्ञान के जमाने में टुकड़े की बात नहीं चलेगी। अब सारी दुनिया एक होनेवाली है। इसके आगे "जय-हिन्द" नहीं, "जय-जगत" ही कहना होगा। ऐसा कहने के लिए प्रभु आपको बल दे, यही मेरी प्रार्थना है। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

नीचीमांडल (सौराष्ट्र) ५-१२-'५८

धर्मपरायण लोग भूदान-ग्रामदान-कार्य में कूद पड़ें

व्यक्ति का जीवन तो छोटा-सा होता है, परन्तु समाज का जीवन अखंड चलता है। जैसे नदी अखंड बहती है उसमें नया-नया पानी आता है और पुराना चला जाता है, फिर भी वह अखंड बहती है। वैसे ही समाजरूपी नदी भी अखंड बहा करती है। व्यक्ति आता और जाता है। यही प्राचीन काल से आजतक चलता आया है। आखिर यह सारा क्यों होता है, इसका विचार करते-करते मनुष्य थक जाता है। बहुत-से लोग तो उसका विचार ही नहीं करते।

शरीर-धारण का उद्देश्य सेवा

इस बारे में हमारे ऋषियों ने बहुत विचार किया और बहुत-से निर्णय किये हैं, किन्तु वे सभी निर्णय हमें अनुकूल होंगे और हम उन्हें समझ सकेंगे, ऐसी बात नहीं। अतएव मनुष्य विचार करता ही रहता है। जब वह विचार करते-करते थक जाता है तो उसीमें से अपने लिए एक निर्णय कर लेता है। इसी तरह अपने लिए मैं यह निर्णय करता हूँ। व्यक्तियों का आना-जाना और समाज का अखंड बहना, यह सारा सेवा के लिए है। इसका अर्थ सेवा ही है। अगर हम शरीर धारण न करें तो ईश्वर की सेवा ही नहीं होगी। ईश्वर की सेवा के लिए ही हमें यह शरीर मिला है। मेरे सामने बैठे सभी लोग ईश्वर के लिये हुए शरीर हैं। आखिर ईश्वर क्यों शरीर धारण करता है? अगर वह शरीर धारण न करे तो हमारी सेवा उसे पहुँच ही नहीं सकती। वह शरीरधारी है, इसलिए मेरी सेवा उसके पास पहुँचती है और मैं शरीरधारी हूँ, इसलिए उसकी सेवा कर सकता हूँ। वैसे सेवा कर के छूटने के लिए शरीर चाहिए और जिसकी सेवा करनी है, उसके पास सेवा पहुँचाने के लिए भी शरीर चाहिए। इस तरह सेवा लेने और देने के लिए शरीर धारण करके परमेश्वर यह सारा करता है, ऐसा मैं मानता हूँ। इसीसे मेरे मन का समाधान होता है, और किसी तरह नहीं। इस तरह समझकर हम बरतेंगे तो जीवन के कुछ बाह्य सुख-दुःख हमारी शांति भंग न होने देंगे।

सुख और दुःख दोनों सेवा के साधन

सुख और दुःख दोनों ईश्वर-सेवा के साधन भी बन सकते हैं। मेरे पास बहुत सुख होने पर यदि मैं उसे ईश्वर को समर्पित कर दूँ, सारे समाज को बाँट दूँ तो वह सुख मेरे लिए समाधान का साधन होगा। यदि मैं उसे अपने ही पास रख लूँ तो वह मेरे लिए समाधान नहीं, क्लेश का ही साधन होगा। इसी तरह अपने हिस्से का दुःख मैं अपने ऊपर न लूँ और उसका सारा भार परमेश्वर पर सौंप दूँ तो मुझपर उसे माँगने की बारी नहीं आयेगी। जिस तरह मैं सारे समाज की सेवा में सुख का उपयोग कर सकता हूँ, उसी तरह दुःख का भी कर सकता हूँ। अगर मैं स्वयं दुःखी होऊँ तो अपने दुःख पर से दूसरे के दुःख का भी अनुमान कर सकता हूँ। फलतः ऐसे दुःखी मनुष्य के लिए मेरे मन में सहानुभूति होती है। इस तरह जब दुःखी मनुष्य दूसरे दुःखी मनुष्य के लिए सहानुभूति और दुःख से भर जाता है तो अपना दुःख उसके समाधान में मदद करता है। इस तरह सुख या दुःख, दारिद्र्य या ऐश्वर्य, कमजोरी या शक्ति—जो कुछ भी हो, वह अगर समाज को अर्पण हो तो उसका पूर्ण समाधान होने में कोई सन्देह नहीं।

हमारे भक्तों ने यह युक्ति ढूँढ़ निकाली और उसे उन्होंने "कृष्णार्पण" का नाम तो दिया। फिर भी कृष्णार्पण किसे करना, यह लोगों के ध्यान में नहीं आया। अवश्य ही आज हम नाटक के रूप में ही मंदिर में जाते और भगवान की पूजा करते हैं। सोने, खाने, बैठने-उठने सभी समय भगवान का नाम लेते हैं तो हमारी

भावना पवित्र रहती है। किन्तु अब इस नाटक की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि आज भूखा भगवान हमारे सामने ही खड़ा है। यदि हमारे सामने भूखा भगवान खड़ा न होता तो भले ही हम यह नाटक करते। किन्तु जब वह हमारे सामने खड़ा है तो हमें उसे ही यह सब अर्पण कर उससे जो प्रसादरूप में मिले, उसीको स्वीकार करना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि इस तरह सारे समाज की रचना कृष्णार्पण पर हो सकती है। कृष्णार्पण की कल्पना बहुत बड़े भक्तों के रहने की बात नहीं, बल्कि कृष्णार्पण के तत्त्व पर हम भी सारा जीवन रच सकते हैं।

भोग के साथ अर्पण ही इस प्रकार का

सारा गाँव-समाज भगवद्-मूर्ति है। गीता के एकादश अध्याय में विश्वरूप धारण करनेवाले भगवान का जो वर्णन आता है, वह यही है कि भगवान समाज का रूप धारण कर हमारे सामने खड़ा है, इसलिए जो कुछ हम पैदा करें, वह सारा उसीको समर्पण करना चाहिए। ग्रामदान में भी सारी भूमि गाँव को समर्पण करने की बात है। इसलिए अभी तक जो भक्ति-मार्ग नाटक के रूप में था, वह जीवन में लाने की बात है। हमारा जो कुछ भी हो, उसे हम प्रभु को समर्पित कर दें। प्रभु याने सारा समाज। समाज की ओर से प्रसादरूप जो कुछ मिले, उसे हम स्वीकार करें। ग्रामसभा सबकी सम्मति से सबको जो अर्पण हुआ है, उसका बँटवारा करेगी और उसमें मेरे हिस्से में जो कुछ आयेगा, उसको मैं स्वीकार करूँगा। परन्तु मालिक मैं नहीं, मालिक तो गाँव ही है। इससे प्रसादरूप में लेकर मैं उसकी सेवा करूँगा। हमें जो कुछ मिले, उसे हम खायें और उसमें से भी समाज को अर्पण करके खायें। इस तरह भोग के साथ अर्पण करने की परम्परा चल पड़े और हम अपनी पूरी शक्ति समाज को अर्पण कर दें तो वह कृष्णार्पण हो जाता है। अभी तक यह सारा एक भावना के रूप में था। मैं उसे नाटक कहता हूँ, पर वह समाज के सामने भावना के रूप में ही था। किन्तु अब, जब कि उसपर जीवन खड़ा करना है तो उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होना चाहिए। आज के विज्ञान के जमाने के लिए यह बात बहुत ही अनुकूल और सुलभ है।

जमाने की माँग : सब एक हो जाओ

आज तो गाँव में सारे अलग-अलग मालिक हैं, जिससे गाँव की सम्पत्ति का विकास ही नहीं हो पाता। गाँव का हर घर अलग हो तो अपनी लड़के-लड़की की शादी के लिए उस अकेले को खर्च की चिन्ता होती है। कर्ज भी अकेले को ही लेना पड़ता है। खेती की चिन्ता भी अकेला ही करता है। बीच की सुविधा भी अकेले को ही करनी पड़ती है। परिणामस्वरूप वह एक व्यक्ति इस विज्ञान-युग में खेती के विकास के लिए साधन उपलब्ध नहीं कर पाता। किन्तु सारा गाँव एक हो जाने पर तो पानी की सुविधा हो जायगी। बीज लाने, कर्ज निकालने और समय पर मदद देने की भी व्यवस्था हो सकेगी। यह सारा बाहर से कोई कर देगा, ऐसी बात नहीं। बल्कि हम ही इकट्ठा होने पर यह सब कर सकते हैं। तब हम वैज्ञानिक साधनों का भी धड़ल्ले से उपयोग कर सकते हैं। चीन और जापान में हमारे देश जैसी ही कम जमीन है, फिर भी वे लोग हमसे ज्यादा सुखी हैं और बहुत ज्यादा उत्पादन भी करते हैं। उतनी ही जमीन में वे हमसे चौगुनी फसल पैदा करते हैं। कारण वे सामूहिक तौर पर कुशलता से काम करते हैं। उनके औजारों में भी सुधार होता रहता है। लेकिन यह सारा अकेला मनुष्य करना चाहे तो वह हो नहीं सकता। इसलिए सब लोगों को एकत्र होना चाहिए। यह इस जमाने की माँग है। जमाना कहता है कि तुम सब एकत्र हो जाओ। भक्त के लिए तो हम इसे भावना के रूप में रखते हैं, किन्तु अब इसे भावना के रूप में न रखते हुए प्रत्यक्ष कृति और प्रत्यक्ष जीवन में लाने का अवसर आ गया है। इसीलिए मैं आठ साल से लगातार घूम रहा हूँ।

मेरा घूमना न घूमना जनता के हाथ में

आज एक भाई मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने कहा कि "आपकी यह तपस्या कब तक चलेगी?" मैंने कहा—"जब तक प्रभु चलाये।" फिर, प्रभु मुझे कब तक चलायेगा, यह तो उसे ही पूछना होगा। लोग प्रभु से यह पूछ सकते हैं। क्योंकि उनका प्रभु के साथ अधिक सम्बन्ध है। यदि प्रभु उन्हें कोई जवाब दे तो मुझे वह अवश्य बताइये, जिससे मुझे भी मालूम हो जायगा कि कब तक मुझे चलना है। इसलिए मेरी यह यात्रा कब तक चलेगी, इसका जवाब मेरे पास नहीं, आपके पास है। वह आज जो कहता है, उसके लिए आप एक तारीख निश्चित कर दीजिये तो बाबा को जो करना है, वह हो जायगा। फिर उसका चलना आप बंद हो जायगा। यह सारा आपके हाथ में है। फिर बाबा के मन में दूसरा कुछ आयेगा तो वह दूसरा काम करेगा, यह अलग बात है। मैं तो आपको प्रभु के रूप में देखता हूँ। इसलिए आप मुझे जब तक घुमायेंगे, घूमता रहूँगा। इसे तो मैं अपनी यात्रा मानता हूँ, क्योंकि प्रभु की सेवा के लिए घूम रहा हूँ तो मेरे लिए यह एक यात्रा ही है।

नरसमूह नारायण को सब कुछ अर्पण करे

मैं स्वामीजी से यह कहना चाहता हूँ कि अब तक आप यह सब नाटक के रूप में, भावना के रूप में करते थे तो अब वही समाज के लिए क्यों नहीं करते? कृष्णार्पण के तत्त्व पर समाज-रचना क्यों नहीं करते? अब तक आपने व्यक्तिगत मालकियत क्यों रखी है? आज समाजरूपी नारायण का अवतार हो गया है। यह नरसमूह ही नारायण है। इसे सब कुछ अर्पण करने के बाद सब मिलकर निश्चय करें कि हम सब प्रसादरूप में बाँटकर खायेंगे। फिर हमारा गाँव ही हरि का मंदिर होगा। इसलिए कि सारा गाँव एक स्वतंत्र मंदिर है। गाँव की प्रदक्षिणा प्रभु की प्रदक्षिणा मानी जायगी। तब "शिक्षा-पत्री" प्रभु की जो सेवा बतायी है, वह गाँव की सफाई करने से ही हो जायगी। गाँव-वाले सुबह उठकर सारा गाँव साफ करें तो प्रभु का ही आंगन साफ करने जैसा होगा। अब समय आया है कि अब तक हमने जो भावना नाटक के रूप में सीखी, अब तक जो मूर्तिपूजा की, उसकी सार्थकता इसीमें है कि भक्त और सेवक इसमें कूद पड़ें। उनके लिए यह बहुत ही उचित कार्य है।

आज के ये मठाधीश!

जब मैं बिहार में घूमता था तो एक मठवाले भाई ने प्रस्ताव किया कि बाबा के काम में हम पड़ें और उन्हें मदद दें। फिर उन मठवालों की, महंतों की सभा हुई और उन्होंने तय किया कि हमें बाबा का काम करना चाहिए। किन्तु उसके बाद तो बाबा अकेला ही घूमता रहा, कोई मठवाला उसके साथ नहीं आया। आज तो जैसे घरवाला घर में कैद होकर, आसक्त होकर रहता है, वैसे ही मठाधिपतियों की मठ में आसक्ति हो गयी है। जग-न्नाथ-मंदिर के बारे में आस-पास के गाँववालों की तकरार थी कि

मठपति हमसे बहुत लेते हैं। इस तरह मंदिरों के मालिक भी दूसरे जमींदारों में आ जाते हैं। उसके बदले ये लोग समाज की सेवा करें और अपने पास जो कुछ भी हो, उसे समाज को अर्पण करें। अपनी जमीन गाँव को प्रेमपूर्वक समर्पित करें तो वह प्रभु की सच्ची सेवा होगी।

इन सांप्रदायिकों ने रामानुज और तुलसी को भी न छोड़ा

रामानुज ने भी इसी तरह विचार किया था। वे तमिलनाड़ में घूमते थे। किन्तु वहाँ उनपर बहुत तोहमत आयी। उनको इतनी तकलीफ हुई कि तमिलनाड़ छोड़कर मैसूर, कन्नड़ विभाग में भाग आना पड़ा। वहीं उन्होंने आश्रम की स्थापना की और पंद्रह-सोलह साल रहे। उसके बाद जब तमिलनाड़ में शान्ति हो गयी तो वे पुनः वहाँ वापस गये। इसी तरह तुलसीदास जी का भी हुआ। जब वे काशी में गये तो उन्हें एक घाट से दूसरे घाट पर लोगों ने निकाल दिया। वैष्णव संप्रदायवालों को उनसे ईर्ष्या होती थी कि इसका तो बड़ा अच्छा चल रहा है। इसके पास बहुत ज्यादा लोग आते हैं, यह ठीक नहीं। किन्तु इसमें बेचारा तुलसीदास क्या करे? वह तो भक्ति करता था, रामायण सुनाता था। यह बात दूसरे वैष्णवों को अच्छी नहीं लगती थी। इसलिए वे उसके पीछे पड़े थे और उन्हें एक घाट से दूसरे घाट पर जाना पड़ा। आखिर काशी का जो आखिरी घाट है—अस्सी घाट, वहाँ जाकर वे रहे। वहाँ उस समय बस्ती नहीं थी। अब तो वहाँ बस्ती हो गयी है। पर चार सौ वर्ष पहले वहाँ बस्ती नहीं थी। बिलकुल उजाड़, वीरान प्रदेश था। वहाँ जाकर वे रहने लगे और उनका अन्त भी वहीं हुआ। इस तरह इतिहास लिखता है कि उन्हें एक घाट से दूसरे घाट पर भागना पड़ा, वह भी वैष्णवों की ही तकलीफ से। इस तरह संप्रदाय बने हैं और वे साधारण मनुष्यों की कोटि में आ गये हैं।

सन्त-महन्त यह मौका न खोयें

रामानुज ने धर्म की जैसी स्थापना की, आज भी धर्म की वैसी ही स्थापना करने का मौका भक्तों, मठवालों और सन्तों को मिला है। अतः वे फिर से समाज में आ जायँ और शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य आदि की तरह लोगों में पहुँचकर लोक-जागृति का काम करें। ध्यान रखिये कि केवल नाम-स्मरण से धर्म का पालन पूरा नहीं हो सकता। सबसे अन्तिम धर्म हमें लोगों के सामने रखना चाहिए। बाकी रामनाम लेने से पाप नष्ट हो जाय, तब तो आपको इजारा ही मिल गया, ऐसा होगा। क्योंकि एक-एक नाम लेते जायँ और एक-एक काम भी करते जायँ। इस तरह समाधान करने से अच्छा तो यही है कि प्रत्यक्ष धर्म-स्थापना करें, जिसका आज हमें अवसर मिला है। आठ साल पहले जब मुझे अचानक भूदान मिला तो मैंने उसे प्रभु का इशारा, प्रत्यक्ष प्रभु की आज्ञा मानी और इस काम के लिए निकल पड़ा। बाकी इस वृद्ध शरीर में दूसरी कोई ताकत नहीं है।

धार्मिक जनों से अपील

मेरी इन सब धार्मिक पुरुषों से यह प्रार्थना है कि अगर वे निकल पड़ें तो यह काम उनके योग्य ही है। आज तो मुझे कांग्रेसियों, प्रजासमाजवादियों आदि की खुशामद करनी पड़ती है। आखिर ये मठपति और सन्त मठों में क्यों पड़े हुए हैं? ये बाहर क्यों नहीं आते? ये लोग अगर इस काम के लिए बाहर आयेंगे तो यह उनके योग्य धर्म-कार्य ही है।

कल ही एक जैन भिक्षुक मुझसे मिलने आये थे। मैंने उनसे पूछा कि "क्या आप यह काम न कर सकेंगे?" उन्होंने कहा कि "हमें आदान-प्रदान करने के लिए मत कहिये।" यह सुनकर मैंने कहा "भले मानुस, अपने लिए मत लो। पर इसमें तो समाज में जिनके पास कुछ भी नहीं, उनके लिए लेना है। अतः इससे धर्म में कोई बाधा नहीं पहुँचती।" कुछ तो ऐसे विचित्र लोग होते हैं, जो कहते हैं कि "बीमारों की सेवा करना ही पाप है। क्योंकि उनकी सेवा कर उनके प्रारब्ध में हम रुकावट डालते हैं। अपना प्रारब्ध वे भोग लेंगे तो मुक्त हो जायँगे। इसके बदले हम उनके प्रारब्ध में रुकावट डालें तो उनकी मुक्ति में विलंब हो जायगा याने पाप ही होगा।" इस तरह हृदय बहुत कठोर हो और स्वयं कठोर बनकर करें तो उससे भक्ति नहीं होती है। इसलिए मुझे लगता है कि धर्मपरायण लोगों को दूसरों की सेवा में कूद पड़ना चाहिए। कुछ भूल होती हो तो बचाना चाहिए और भूल सुधारनी चाहिए। ●●●

प्रार्थना-प्रवचन

कडियाणा (झालावाड़) ६-१२-'५८

सौराष्ट्र में "तालुका-दान" से ही शुरूआत हो

अपने शास्त्र में लिखा है कि अपना उद्धार खुद को ही करना चाहिए "उद्धरेदात्मनाऽत्मानम्।" यह वाक्य सबको लागू होता है। जितना परमार्थ आचरण में लागू होता है, उतना ही व्यवहार संसार में भी लागू होता है।

सचमुच हमारा उद्धार हमसे ही होगा, दूसरे से नहीं। हमें दूसरे की मदद तो मिलेगी, पर मदद अलग है और उद्धार अलग। किसी भी बीमार को डॉक्टर या सेवक मदद करेगा, पर यदि उसमें प्राण-शक्ति होगी, तभी वह मदद काम आयेगी। नहीं तो डॉक्टर जाहिर कर देगा कि मुझसे कुछ नहीं होगा। सेवक भी आखिरी दिन तक सेवा करता रहेगा। फिर भी यह समझ जायगा कि अपना धर्म निभाने के लिए मुझे इसकी सेवा करनी है, अन्यथा अब यह सेवा से नहीं बचेगा। याने मुख्य आधार प्राण-शक्ति पर ही है। यह बात सर्वत्र लागू होती है।

आन्तरिक शक्ति से ही उत्थान

आज अपना देश आजाद है, स्वतंत्रता मिल गयी है। यह बात सर्वत्र लागू होती है। इसलिए हम सारे देश का कारोबार खुद देख सकते हैं। अंग्रेजों ने हमें इसे अच्छी अवस्था में नहीं सौंपा था। देश के बिलकुल टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। हमें दूकान मिली, पर "गुडतिल" नहीं मिला। विशेष पुरानी दूकान का जो भाग्य, जो पुण्य मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। बिलकुल टूटी दूकान हमारे हाथ में आयी और हमें उसे लेकर पुनः अच्छी बनाना था। सारा देश ही अपनी शक्ति पर खड़ा करने की बात थी। इसीलिए हमारी सरकार देश की परिस्थिति देख, दूसरी सरकारों से मदद ही माँगती है और वे मदद देती भी हैं। किन्तु बाहर से कितनी ही मदद क्यों न मिले, हिन्दुस्तान तो अंदर की शक्ति से ही खड़ा हो सकता है। बाहरी मदद बिलकुल गौण है।

वह यदि ज्यादा भी हो तो नुकसान ही होगा। कोई बिना शर्त ज्यादा मदद दे, यह सम्भव नहीं। फिर भी मान लें कि बिना शर्त ज्यादा मदद दे तो भी उससे नुकसान ही होगा। रोगी को डॉक्टर ज्यादा दवा दे तो उससे नुकसान ही होगा। विशिष्ट मात्रा में औषध देने से ही लाभ होता है। इसलिए बिना शर्त बाहरी मदद मिले तो भले ही लें, पर देश में अंदर से शक्ति होने पर ही वह खड़ा हो सकेगा।

गाँव का उद्धार गाँव ही कर सकता है

इस तरह से जो बात देश को लागू होती है, वही गाँव को भी लागू होगी। गाँव का उद्धार गाँव ही कर सकता है, दूसरा नहीं। दूसरे लोग मदद दे सकते हैं। दूसरों से मदद हासिल कर सकते हैं, पर वह ज्यादा न माँगी जाय। थोड़ी मदद मिलनी चाहिए और उसे हासिल भी करना चाहिए। फिर भी हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारा उद्धार हमारी अपनी शक्ति से ही होगा। यदि हम यह सोचें कि ग्रामदान करने पर हमारे लिए उद्धार हेतु बाहर से बहुत-सी योजनाएँ आयेंगी, बहुत-सी मदद मिलेगी तो वह ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के बदले ग्राम-पारतंत्र्य की स्थापना ही मानी जायगी। वास्तव में ग्रामदान देने पर ही हम स्वतंत्र होते हैं, अभी तक तो परतंत्र ही थे। अभी तक एक-एक व्यक्ति अलग था और साहूकार, वकील, सरकारी नौकर उसे ठगते थे। किन्तु ग्रामदान के बाद सारा गाँव एक होगा तो सारे गाँव की शक्ति स्थापित होगी और सब मिलकर बाहर के लोगों के साथ सम्बन्ध रखेंगे। सारा गाँव एक होने पर वह अपनी सारी योजनाएँ स्वयं करेगा। गाँव में कुछ दुःख होने पर सारा गाँव उस दुःख के निवारण की योजना करेगा। आज गाँव में सबके अलग-अलग व्यवहार करने से परतंत्रता का अधिक अनुभव होता है। पर सारा गाँव एक होने पर ऐसा न होगा। वैसे सारी दुनिया में कुछ-न-कुछ परतंत्रता तो होती ही है। एक राष्ट्र स्वतंत्र होते हुए भी जब वह दूसरे राष्ट्र के साथ संबंध रखने को बाध्य होता है तो उसमें थोड़ी परतंत्रता रह ही जाती है। इसी तरह एक गाँव स्वतंत्र होने पर भी उसका दूसरे गाँव से सम्बन्ध आने पर थोड़ी परतंत्रता रही जाती है। फिर भी आज जितनी परतंत्रता है, उतनी नहीं रहेगी। यह सब समझकर अगर ग्रामदान करें तो आप को तत्काल अनुभव होगा कि हमारा बल बढ़ गया है।

हम न किसीसे डरें, न किसीको डरायें

कुछ लोगों को भय लगता है कि ग्रामदान होने पर व्यापारी एकदम टूट पड़ेंगे और कहेंगे कि "अब हम आपको कर्ज नहीं देंगे, क्योंकि आप मालिक नहीं रहे हैं। इतना ही नहीं, आपने जो पुराना कर्ज लिया है, उसे जल्द-से-जल्द वापस करें।" किन्तु ग्रामदान के बाद सारा गाँव मिलकर व्यापारियों को समझायेगा कि "आप हमें क्यों डराते हैं? हमने ग्रामदान देकर कोई बुरा काम तो नहीं किया। अभी तक हम आपस में लड़ते थे, एक-दूसरे की परवाह नहीं करते थे, किन्तु अब हमने एक-दूसरे की मदद करने का संकल्प किया है। इसमें कुछ बुरा काम तो किया नहीं। आखिर आपको ऐसा क्यों लगता है कि आपका कर्ज डूब जायगा? क्या हम कुछ प्रतिष्ठा खोये हुए हैं? एकआध मनुष्य प्रतिष्ठा खो सकता है, पर सारा गाँव तो प्रतिष्ठा खोकर नहीं बैठा है? वास्तव में ग्रामदान के बाद तो आपकी ज्यादा सुरक्षितता है। हाँ, एक बात है कि पहले आप जितना ब्याज लेते थे, उतना ब्याज न ले सकेंगे। यह चीज ही खराब थी। हमने खराब काम छोड़ दिया तो आप भी इसे छोड़ दीजिये। हमने कोई करार का भंग तो किया नहीं है। हमें आपका कर्ज डुबाना भी नहीं है। आप हमारा रक्षण कीजिये। हम भी जितना बनेगा, उतना आपका रक्षण करेंगे।" फिर भी यदि वे न समझें तो गाँववाले अडिग रहें। फिर ये व्यापारी कर ही क्या लेंगे? हम तो उनका कर्ज डुबाना नहीं चाहते, हम सब तो मिलकर उन्हें निर्भय ही करना चाहते हैं। अतः हम न तो किसीसे डरें और न किसीको डरायें। यह सारा ग्रामदान में आसान हो सकता है।

आत्मा से ही निर्भयता की प्राप्ति

आज एक भाई कहते थे कि पचीस-पचीस गाँव ग्रामदान का संकल्प एक साथ करें तो उनका भय कम हो जायगा। भय तो अंदर से होता है। जिन्होंने अंदर से भय छोड़ा, वे अकेले ही सारी सृष्टि के सामने निर्भय हो खड़े हो सकते हैं। उनमें अंदर से ही निर्भयता का आरम्भ होता है। निर्भयता आत्मा से ही प्राप्त की जा सकती है। एक भी मनुष्य शुभ संकल्प कर अमल में लाये तो वह सारी दुनिया को निर्भय कर सकता है और खुद भी निर्भय हो सकता है। इतना बल आत्मा में होता है। उसे दूसरा कोई डरा नहीं सकता। किन्तु मान लीजिये कि अंदर से इतना बल न मिलता हो तो पचीस-पचीस गाँव एकत्र होंगे तो दूसरों को भी धीरज मिलेगा। इस तरह सामूहिक तौर पर धीरज प्राप्त होगा, निर्भयता मिलेगी। सारा गाँव एक होगा तो निर्भय होगा और पचीस-पचीस गाँव के लोग एकत्र हों तो वह और भी अच्छा होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि एकत्र संकल्प की आशा रखकर उसमें से एक भी काम न करें तो हम बहुत दूर रह जाते हैं। यह सारा परिस्थिति देखकर तय किया जाय। जो कुछ करें, वह समझकर करें।

कल्याणकारी की कभी दुर्गति नहीं होती

गीता में कहा है "नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।" याने जो मनुष्य कल्याण-मार्ग पर चलता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती है। ग्रामदान करते हैं तो क्या आप कोई खराब काम करते हैं? जिसके पास ज्यादा जमीन है, उससे लेकर दूसरे को दे देते हैं। इससे अधिक उसमें आप क्या करते हैं? यदि ऐसा अच्छा काम करते हैं तो इससे आपकी शक्ति बढ़ती ही है। अगर अंदर से विश्वास पैदा हो तो मनुष्य अंदर से निर्भय होगा। अमुक मनुष्य निर्भय होगा तो सारा गाँव निर्भय होगा। एक भाई तैयार होगा तो दूसरा भी तैयार होगा। इस तरह करते-करते सारा गाँव तैयार हो जायगा और एक गाँव तैयार होगा तो दूसरे भी गाँव तैयार हो जायँगे। इस तरह सारा समुदाय तैयार होगा। संस्कृत में एक कहावत है कि जो मनुष्य दूसरे को बचाने के लिए आगे जाता है, वह मार खाता है। पर दूसरे को बचाने के लिए मार खाने में जो मिठास है, वह लड्डू खाने में भी नहीं। लेकिन यह मार खाने की अंदर से तैयारी होनी चाहिए। सामूहिक तौर पर मनुष्य निर्भय होने की कोशिश करे।

सौराष्ट्र में परिपक्व ग्रामदान हो

इसीलिए मैंने कहा था कि अलग-अलग ग्रामदान होने के अपेक्षा तालुके का दान होना अच्छा है। इसीमें से तालुकादान की बात निकली थी। जब मैंने तालुकादान की बात की तो लोगों ने एक सर्किल का दान प्राप्त करने की कोशिश की। महाराष्ट्र में इसका संकल्प हुआ था। पहले मानसिक संकल्प होता है, फिर

बोलने की शुरूआत होती है। पहले वाणी में विचार आता है। फिर वह कृति में उतरता है। तालुकादान की बात मैंने की तो पश्चिम खानदेश का सारा अक्राणी महाल ग्रामदान में मिल गया। वहाँ करीब-करीब दो सौ गाँव हैं और सारा विभाग ग्रामदान में आ गया है। यह बात असम्भव नहीं है। कभी-कभी एक व्यक्ति के लिए जो चीज कठिन पड़ती है, वह सामूहिक तौर पर की जाय तो आसान हो जाती है। ऐसा संकल्प होने से एक हवा तैयार होती है और वह हमारे लिए आवाहन है। फिर अगर ग्रामदान को हम उत्तम न बनायें, ग्राम-स्वराज्य का चित्र न बनायें तो हमारा कर्तव्य पूरा नहीं होता। इसलिए महाराष्ट्र के कुछ कार्यकर्ताओं ने निर्णय किया है कि अब हम वहीं रहेंगे और उस महाल को जितनी मदद हो सकेगी, करेंगे। ऐसा निर्णय करके महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओं ने यह जो हिम्मत की है, इसका फल अवश्य मिलेगा। इसी तरह से यहाँ भी एक-आध महाल तैयार हो जाय। यहाँ कौन-सा महाल दान हो सकता है, यह समझकर उसके लिए आप कोशिश कीजिये। इसका तो जन्म हुआ होगा, तभी वह एकदम आठ साल का होगा। शुकदेवजी बारह साल गर्भ में ही रहे और बारह साल के बाद पैदा हुए तो वह परिपक्व ज्ञानी के रूप में ही पैदा हुए। इसी तरह मैं आशा करता हूँ कि सौराष्ट्र में ग्रामदान भी आठ साल के अनुभव से परिपक्व होकर ही जन्म लेंगे। वे पहले की तरह अपरिपक्व नहीं रहेंगे। शुकदेव जैसे ज्ञानी होकर ही यहाँ के ग्रामदान जन्मेंगे। ●●●

प्रार्थना-प्रवचन

आदिपुर (कच्छ) ३०-११-'५८

विज्ञानवृद्धि से भोगवृद्धि और भोगवासना का क्षय

आज कच्छ में मेरा तीसरा दिन है। इस बार का तो यह आखिरी दिन है। जबतक ये भूदान, ग्रामदान आदि कार्य पूरे नहीं होते, तबतक परमेश्वर की इच्छा रही तो हम इसी तरह घूमते ही रहेंगे। अतः परमेश्वर की इच्छा रही और हमारा पाँव न टूटा तो दूसरी बार भी हम यहाँ आ सकते हैं।

सिंधी बस्तियाँ बसानेवाले धन्यवाद के पात्र

मैं उन सब भाइयों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने गांधीधाम बसाने में मेहनत और मदद की है। यह एक बहुत अच्छा काम हुआ। इससे सिंधियों को तो राहत मिली ही, सारे भारत की भी शोभा बढ़ी है। सिंधीभाई साहसी हैं। दुनियाभर में कोई ऐसा देश नहीं, जहाँ वे न पहुँचे हों। जिस जिस प्रान्त में वे जाते हैं, वहाँवालों को अपना-सा बना लेते हैं और उनमें घुल-मिल जाते हैं। फिर भी दो-चार जगहें ऐसी हों, जहाँ सिंधी जमात का आदि स्थान बना रहे, यह अच्छा है। इसलिए यह आदिपुर और आदिसर ("आदिसर" नामक एक सरोवर आदिपुर गाँव में सिंधी भाइयों ने बनाया है) हमें बहुत अच्छा लगा।

हमने हिन्दू-धर्म में भगवान के बहुत-से नाम सुने हैं। उनसे भगवान की भी शोभा बढ़ी है और भारत की भी। महाबलेश्वर, तारकेश्वर, दूधेश्वर आदि नाम भी पाये जाते हैं। दूधेश्वर का तो एक इतिहास भी है। साबरमती के पहले गांधीजी का आश्रम कोचरब में था। वहाँ गांधीजी के प्रयोग चलते थे, इसलिए दूध, दही नहीं मिलता था। उसके बाद साबरमती नदी के नजदीक नया आश्रम बना। वहाँ दूधेश्वर नामक महादेव का एक मंदिर था। दूधेश्वर महादेव की कृपा से साबरमती आश्रम में हमें दूध, दही मिलने लगा, ऐसा मैंने उस समय कहा था। सारांश यह कि ऐसे तरह-तरह के भगवान के नाम थे। लेकिन "निर्वासितेश्वर" यह नाम मैंने कभी नहीं सुना। इसका आविष्कार तो यहीं हुआ है। यह एक अद्वितीय नाम हो गया है। इस तरह परमेश्वर के नामों में भी वृद्धि करनेवाले भक्त-गण यहाँ बसते हैं। इससे हिन्दुस्तान की शोभा बढ़ती है। हमारे देश में सिंधी भाई इधर-उधर बिखरे हैं, फिर भी यदि उनमें प्रकाश और तेजस्विता बढ़ेगी तो बिखरे हुए नक्षत्रों के समान वे भी चमकेंगे। किन्तु जैसे आकाश में तारकों का गुच्छा होता है, वैसे सिंधियों की जमात भी एक जगह हो तो अच्छा ही है। इसलिए कंडला, आदिपुर, गांधीधाम में सिंधियों की जमात रहना अच्छा ही है। जिन्होंने यह काम करने की कोशिश की, उन भाई प्रताप आदि सबको मैं धन्यवाद देता हूँ।

सबमें नमक-से घुलमिल जायँ

यहाँ आने पर सिंधी भाइयों का क्या कर्तव्य होता है, यह मैंने आज दोपहर की सभा में बताया है। एक तो वे अपनी जमात की सबसे बड़ी चीज कायम रखें और दूसरा आस-पास के समाज में घुलमिल जायँ। उनकी सेवा करें, अपना अलगाव न रखें। मैंने कहा कि जिस तरह शक्कर दूध में घुलमिल जाती है, उसी तरह आपको आस-पास के लोगों में घुलमिल जाना चाहिए। शक्कर दीखती नहीं, पर दूध मीठा बनता है। पानी में नमक का टुकड़ा डाल दिया जाय तो टुकड़ा नहीं रहता, पर उसका स्वाद बना रहता है। इसी तरह सिंधियों को यहाँके लोगों में घुलमिल जाना चाहिए, टुकड़ा नहीं होना चाहिए। साथ ही अपना स्वाद, अपनी विशेषता भी कायम रखनी चाहिए। सिंधियों की विशेषता क्या होगी? सिंधी जमात है, धर्म नहीं, वे हिन्दू-धर्म में ही हैं। इसलिए दाढ़ी कैसी रखनी चाहिए, बाल कैसे बढ़ाने चाहिए, कपड़े कैसे पहनने चाहिए, यह कोई उनकी विशेषता नहीं। अतः जिस-जिस समाज में वे जायँ, वहाँ अलग दीख न पड़ें, उन्हें ऐसी कोशिश करनी चाहिए। किन्तु उन्हें अपनी विशेषता भी सम्हालनी चाहिए।

सिंधी भाषा को मालामाल बनायें

मैं जानता हूँ कि सिंधी भाषा साहित्य की भाषा है। इसलिए उसका भारत की चौदह भाषाओं में समावेश हो। वह भाषा सिर्फ बोली ही होती और साहित्यिक न होती तो मैं यह आग्रह नहीं करता। जितनी बोल-चाल की भाषाएँ हैं, उन्हें दूसरी भाषाओं में घुल-मिल जाना चाहिए। साहित्यिक भाषा में संस्कार होते हैं। ऐसे अच्छे-अच्छे संस्कार सिंधी भाषा में कायम रखें और उनका अध्ययन करें। जिन प्रान्तों में वे रहें, वहाँकी भाषा भी सीखें। मराठी, हिन्दी, गुजराती भाषाओं में बहुत-सा साहित्य पड़ा है। ऐसी भाषाएँ भी सीखनी होंगी

और उनमें जो साहित्य है, सिंधी भाषा में उसका अनुवाद करना होगा। इस तरह आप सिंधी साहित्य को संपन्न बना सकते हैं। हिन्दी और सिंधी में बहुत फर्क नहीं है। राष्ट्रभाषा के तौर पर आपको हिन्दी का अध्ययन करना चाहिए। सिंधी भाषा के लिए मेरे मन में बहुत प्रेम है। इसलिए सिंधियों की सेवा में मैं जहाँ-जहाँ जाता था, वहाँ-वहाँ एक ही वाक्य जो मुझे आता है, बोला करता था। "हिन्दी अन्दु सिंधी अणे घणोफर्क को न आहे" याने हिन्दी और सिंधी में बहुत फर्क नहीं है। इसलिए आप हिन्दी को जरूर सीखिये। इसके अलावा हिन्दी भाषा के साहित्य का अध्ययन कर उसे सिंधी में लायें और अपना साहित्य बढ़ायें। आपका जो "धरती-माता" पत्र चलता है, उसे बढ़ाना चाहिए। उसमें जितनी पूँजी चाहें, लगाइये। उसके लिए कर्ज मत लीजिये, संपत्ति-दान से ही काम चलाइये। सारांश यह है कि आपकी सबसे बड़ी चीज है सिंधी जबान। उसे आपको मालामाल करना चाहिए।

सिंधी को संविधान की भाषा कैसे बनायें?

आज मैंने देखा कि आपके "धरती-माता" पत्र के ग्राहक कहाँ-कहाँ और कितने हैं। बेंगलूर में इसके पचास ग्राहक हैं। वहाँके सिंधी कन्नड़ सीखें और उस भाषा का साहित्य अपनी भाषा में लायें। सिंधी भाषा को मालामाल करने के लिए आपको इसी तरह कोशिश करनी चाहिए। यदि आप सिंधी भाषा का साहित्य बढ़ायेंगे तो निश्चय ही भारत की चौदह भाषाओं के साथ सिंधी का भी नाम जोड़ा जायगा। फिर वे चौदह की जगह पन्द्रह याने पूर्णिमा हो जायँगी। चन्द्र की कला की तरह यह एक-एक भाषा हो जायगी। लेकिन मेरा मानना है कि यह काम नाम के आग्रह से नहीं होगा। भाषा में साहित्य भरना चाहिए। उसीका परिणाम होगा। फिर पार्लमेण्ट में लोगों को जब यह विश्वास हो जायगा कि यह भी भारत की एक अच्छी भाषा है तो वे उसका भी समावेश कर भारत की पंद्रह भाषाएँ बना देंगे। इसके लिए आपको अपनी जबान का विकास करना चाहिए। आप किसी भी बंगाली को देखें, चाहे वह अमेरिका जाय या इंग्लैण्ड, उसके पास कोई-न-कोई बंगाली किताब जरूर होगी। (कोई भी बंगाली जब कभी मुझे मिलता है, तब मैं उसे कहता हूँ कि भाई, जरा गाओ। फिर वह गाता है। अभी तक मुझे ऐसी कोई कोयल नहीं मिली, जो गाती न हो और न कोई ऐसा बंगाली ही मिला, जो गाता न हो) यही चीज आप महाराष्ट्र में भी देखेंगे। वे जिंदगी भर अंग्रेजी सीखेंगे, विदेश में जायँगे, फिर भी वहाँ भी "ज्ञानेश्वरी" पढ़ेंगे। इसमें भाषा का अभिमान नहीं, भाषा का प्रेम है। अभिमान से बात बिगड़ती है, संकुचितता आ जाती है, पर प्रेम से भाषा का विकास भी होता है। इसलिए सिंधी भाषा को आपको शक्तिशाली बनाना होगा।

सिंधी के अनुकूल लिपि

इसके लिए मैंने एक उपाय ढूँढ़ा है और इसीलिए मैंने सिंधी "गीता-प्रवचन" नागरी में छपाया है। सौ साल पहले सिंध-प्रांत में सिंधी नागरी में ही लिखी जाती थी। बाद में अरबी लिपि आयी है। अरबी लिपि सिंधी के अनुकूल नहीं, क्योंकि उसमें असंख्य संस्कृत शब्द हैं। अतः यदि आप नागरी लिपि रखें तो मराठी, हिन्दी, संस्कृत तीनों भाषा के साथ आपका सम्पर्क रहेगा और आपके बच्चे ये तीनों भाषाएँ सीख सकेंगे। एक ही लिपि में सब कुछ काम हो जायगा। इसलिए दस साल में सिंधी भाषा नागरी में ही हो जाय। सिंधी जबान की रक्षा की यह सर्वोत्तम योजना है। वह योजना यहाँ होनी चाहिए। इसलिए सिंधी साहित्य का प्रकाशन मण्डल, "धरती-माता" के साथ हो, ऐसी सलाह मैंने आज दी है।

हम भी विज्ञान-युग के अनुरूप बनें

हमें समझना चाहिए कि दिन-प्रतिदिन संसार का रूप बदल रहा है तो उसके साथ हमें भी बदलना होगा। जैसे-जैसे विज्ञान बढ़ेगा, जीवन बहुत सादा होगा। आज विज्ञान उतना बढ़ा नहीं है, इसीलिए ऐशोआराम चल रहा है। लेकिन जब विज्ञान बढ़ेगा तो भोग-साधन बढ़ेंगे, पर भोग की वासना नहीं रहेगी। इसका नाम विज्ञान है। आज न्यूयार्क जैसे शहरों में चालीस-चालीस, साठ-साठ मंजिल के मकान बन रहे हैं। कई मनुष्यों का जीवन उसी मकान में खत्म हो जाता है। उन्हें मकान से बाहर आने की भी जरूरत महसूस नहीं होती। क्या आप यह समझते हैं कि विज्ञान बढ़ेगा तो यह सब भी बढ़ेगा? नहीं, यह ज्ञानियों का लक्षण नहीं। ज्ञानी तो बहुत ही गम्भीर अध्ययन करनेवाला और बहुत सादा रहता है। यों तो बिलकुल अपढ़ भी सादा रहता है, फिर भी उसमें और गहरे ज्ञानी में फर्क है। अपढ़ का लक्षण है, जो सादा हो। पढ़े हुए का लक्षण है, जो बहुत मौज, विलास ऐशोआराम करे और गहरे ज्ञानी का लक्षण है, जो बहुत ही सादा हो।

विज्ञानवृद्धि से जीवन सादा और सरल होगा

भोग-विलास करना विज्ञान नहीं है। उपभोग की चीजें हरएक के पास पहुँचाना ही वास्तविक विज्ञान है। जब विज्ञान की वृद्धि होगी तो लोगों का दैनिक जीवन सादा और सरल बनेगा। आज भी थोड़े-से विज्ञान के कारण न्यूयार्क, लन्दन के श्रीमान लोग सप्ताहान्त में दो दिन खेती पर जाते और प्रकृति का आनन्द लूटते हैं। जब विज्ञान बढ़ जायगा तो सभी सोचने लगेंगे कि यह आनन्द चंद दिन ही क्यों लिया जाय? क्यों न रोज लें? फलतः सभी अपना घर खेत के पास रखने की सोचेंगे और ये बड़े-बड़े शहर नष्ट हो जायँगे। जब विज्ञान बढ़ेगा तो लोग आज की तरह अपने को कपड़ों में बाँध न रखेंगे। तब उन्हें बच्चों के शरीरों को सूर्य-किरणों के स्पर्श का महत्त्व भी ध्यान में आयेगा। शंकराचार्य ने तो कहा है—"कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः" याने लंगोटी पहननेवाला सचमुच भाग्यवान है। इसका रहस्य भी यही है।

विज्ञान पढ़ने पर शुद्ध दूध, घी, शहद, तरकारी, फल आदि बढ़ेंगे, कारण आदमी समझ जायगा कि इन्हींसे हमें पुष्टि मिल सकती है। उस समय शराब, बीड़ी, सिनेमा आदि गंदी बातें कभी न रहेंगी। विज्ञान से तो समृद्धि ही बढ़ेगी। भोग-साधन बढ़ें और भोग की वासना न रहे, इसीका नाम विज्ञान है। मान लें कि मेरे पास मोटर है, किन्तु सौ मील जाना हो, तभी मैं उसका उपयोग करूँ और हमेशा पाँव से चलूँ तो इसीका नाम विज्ञान है। पाँव से चलना खूब बढ़ना चाहिए। उससे दीर्घ जीवन और आरोग्य-प्राप्ति होती है। फिर भी जरूरत पड़ने पर विमान में भी बैठ सकते हैं।

सर्वोदय में विज्ञान का अधिक-से-अधिक उपयोग

एक भाई ने कहा था कि तुम सर्वोदयवाले ऐसे हो कि विज्ञान का लाभ ही लेना नहीं चाहते। मैंने कहा "सर्वोदय में या तो पाँव चलेंगे या हवाई जहाज। ये मोटर वगैरह सब खत्म हो जायँगी।

दिनप्रतिदिन जमीन का महत्त्व बढ़ेगा, इसलिए रास्ते में ज्यादा जमीन नहीं जायगी। उस जमीन का भी उपयोग खेती में ही होगा। फिर जब जरूरत हो, तब हवा में भी चलेंगे। उसके लिए जहाज की मुफ्त सेवा होगी। वस्तुतः विज्ञान बढ़ेगा तो मनुष्य दुनियाभर घूमना भी बंद कर देगा और घर बैठे दुनिया का ज्ञान हासिल करेगा।" एक भाई इंग्लैण्ड से आये थे। उन्होंने पूछा, "क्या आपका कभी इंगलैण्ड आना संभव है?" मैंने कहा, "परमेश्व की इच्छा हो तो अवश्य आऊँगा।" किन्तु उसके साथ दूसरा वाक्य यह भी जोड़ दिया कि "जैसे-जैसे विज्ञान बढ़ेगा, विचार-प्रचार के लिए बाहर जाना नहीं पड़ेगा।" उस भाई ने कहा, "आपकी बात बिलकुल ठीक है, क्योंकि विज्ञान में दूर-दूर से भी लोग वाणी सुन सकेंगे और रूप भी देख सकेंगे। विज्ञान ने आज ही टेलीविजन की खोज कर दी है तो यहाँसे उठकर जाने की जरूरत ही क्या है?" इसलिए स्पष्ट है कि सर्वोदय की योजना में विज्ञान का ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग होगा।

मैं कहना चाहता था कि विज्ञान की वृद्धि होने पर उपभोग के साधन सबको सुलभ होंगे। गाँव में मोटर, घड़ी, डाक्टर, चश्मा सब कुछ रहेगा और जिसे जरूरत पड़ेगी, वह उनका उपयोग भी कर सकेगा। लेकिन स्थिति ऐसी हो जायगी कि ये चीजें धरी रहेंगी, पर लोग इतने स्वस्थ, कर्मठ और सुदृष्ट रहेंगे कि उन्हें उनकी जरूरत ही न पड़ेगी। जैसे-जैसे विज्ञान-युग बढ़ता जायगा, जीवन अत्यन्त सादा, सरल और निर्मल बनेगा। यहाँ भी आप अपना जीवन स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल रखें, जिससे आरोग्य बढ़े। बहुत ज्यादा विलास और शौक न करें तथा आनन्द करें।

फैक्टरी के नौकरों के बारे में सुझाव

आज फैक्टरी में आठ-आठ घंटे यन्त्र के सामने मनुष्य खड़े रहते हैं और यन्त्र चलाया करते हैं। वे यन्त्र ही बन जाते हैं, जिससे उनके जीवन में आनन्द नहीं रहता। फिर उनके आनन्द के लिए योजना बनायी जाती है और वे रात में नींद खराब करके सिनेमा देखते हैं। खानों में भी आठ-आठ घंटे काम करने से वहाँ उन्हें स्वच्छ हवा नहीं मिलती। फिर सिनेमा में भी स्वच्छ हवा नहीं मिलती। इसीलिए मैंने सुझाया है कि फैक्टरी और खानों में एक घंटा काम करें और शहरों से बीस मील दूर खेतों में बाकी के पाँच-छह घंटे उन्हें काम दिया जाय। वहाँ उन्हें ले जाने की और लाने की मुफ्त सेवा रहे।

विज्ञानयुग में बड़ी बस्तियाँ अवैज्ञानिक

अब धीरे-धीरे विज्ञान बढ़ रहा है और अणुशक्ति आ रही है। अगर हम उसका उपयोग मनुष्य के जीवन के लिए न करेंगे तो मनुष्य-जाति खत्म हो जायगी। कारण वह संहारक शक्ति है। इसलिए मनुष्य-जाति को उससे खतरा है। किन्तु यदि विज्ञान बढ़ेगा तो इतनी बड़ी शक्ति का उपयोग हर गाँव में विधायक काम में किया जा सकेगा। तब हर गाँव में ऐटम का उपयोग होगा। छोटी-छोटी बस्तियाँ होंगी। बड़ी-बड़ी बस्तियाँ अवैज्ञानिक मानी जायँगी। विज्ञान कहेगा कि पाँच-पाँच, छह-छह हजार की बस्ती बनाओ। इस विज्ञान-युग में छोटी-छोटी बस्तियाँ ही बनेंगी।

फूलों को तोड़ो नहीं, साक्षी बनकर देखो

भाइयो, जरा खयाल कीजिये, यहाँ आपका जीवन कैसा बन रहा है? यहाँ आरोग्य खूब बढ़ना चाहिए। आनन्द की कोई कमी नहीं होनी चाहिए। आनन्द का पूर्ण भोग होना चाहिए। परमेश्वर ने हमें आनन्द दिया है, वह हम सबको यहाँ भरपूर मिले। पेड़ में फूल हैं। मुझे तो उनके दर्शन से ही आनन्द मिलता है। किन्तु कुछ लोग उन्हें तोड़कर अपने गंदे बालों में या नाक में डाल लेते हैं, यह एक अजीब बात है। आखिर उसमें क्या सौंदर्य और क्या दर्शन है? बालों में डालनेवाला स्वयं फूलों को देख भी नहीं सकता। इसलिए फूलों का दूर से दर्शन करो, उन्हें साक्षी बनकर देखो। वे पेड़ पर रहेंगे, तभी टिकेंगे। तोड़ डालोगे तो जल्दी सूख जायँगे। पेड़ पर रहने से हमें निर्मल आनन्द मिलेगा, दर्शनानन्द मिलेगा।

धर्म के नाम यह सौंदर्य का नाश

इसी तरह बहनें भी आजकल गहनें पहनती हैं। यदि परमेश्वर यह चाहता तो वह बहनों की नाक और कान में छेद क्यों न बना देता? जिसने दो बड़े-बड़े छेद दिये हैं, वह तीसरा भी बना देता। लेकिन मानो भगवान से गलती हुई, इसलिए ये बहनें नाक में और कान में छेद बनाती हैं। फिर मोतियों में भी छेद बनाकर उन्हें नाक और कान में डालती हैं। मजा यह कि यह सारा धर्म के नाम पर किया जाता है। लेकिन भाई, यह हिन्दू-धर्म नहीं है। नाक और कान में छेद रखकर मनुष्य का शरीर जैसा भगवान ने बनाया है, वैसा ही वह सुन्दर है, उसे और छेद डालने की इच्छा क्यों करते हो? इससे तो मनुष्य-देह की सुंदरता घटती है, बढ़ती नहीं। कुछ बहनों के कान का छेद तो आखिर में इतना बड़ा हो जाता है कि छोटे बच्चे का हाथ भी उसमें चला जाय। इसलिए इसमें धर्म की भावना नहीं होनी चाहिए। यहाँ आयी बहनों से मैं कहना चाहता हूँ कि इसपर आप लोग सोचें और ऐसे छेद न बनायें। कुछ बहनों के हाथ में चूड़ियाँ भी इतनी होती हैं कि आधा हाथ ही दब जाता है। हवा भी नहीं मिल पाती। अगर आप इन सबपर सोचें तो विज्ञान-युग के लायक जीवन बिता सकेंगे।

वैज्ञानिक दृष्टि से योजना करें

यदि यहाँ नैतिक जीवन में प्रेम, ऐक्य और धर्म बढ़े और भाई भाई के साथ एकरूप हो जाय तो यह स्थान विज्ञान-युग के लायक बन जायगा। उस दृष्टिसे यहाँकी योजना कीजिये। योजना में वैज्ञानिक दृष्टि रखें। आज उतना विज्ञान नहीं बढ़ा है, किन्तु दीर्घ दृष्टि रखकर काम करें तो यहाँ आपके आदिपुर, गांधीधाम में शांति और समृद्धि होगी। आप सुखी होंगे। परमेश्वर आपको वैसी ही बुद्धि देकर शांति, समाधान और दीर्घायु दें। ● ● ●

कार्यकर्ता-सम्मेलन में

आदिपुर (कच्छ) ३०-११-'५८

कार्यकर्ताओं के लिए तीन सुझाव

मेरी आकांक्षा बहुत बड़ी है। छोटी आकांक्षा मनुष्य की आत्मा को पतित करती है। इसलिए आकांक्षा न हो, यह बहुत महान बात है और बहुत व्यापक आकांक्षा होना भी बहुत बड़ी बात है। दोनों का अर्थ एक ही है। आप जानते होंगे कि जो यन्त्र बिलकुल शांत हो, वह बिलकुल नहीं घूमता। उसका और वेग से घूमनेवाले यन्त्रों का रूप एक ही है। दूर से देखा जाय तो अत्यन्त वेग से घूमनेवाला और न घूमनेवाला यन्त्र दोनों का रूप एक ही मालूम होगा। मतलब यह कि हमें अत्यन्त व्यापक आकांक्षा रखनी चाहिए। देह-धारण ही न हो, ऐसी आकांक्षा रखनी चाहिए। या तो अनन्त आकांक्षा हो या बिलकुल न हो।

तीस साल तक निराकांक्ष स्थिति

जब मैं तीस साल तक एक ही स्थान पर बैठा था तो वहाँ एकान्त में अध्ययन, अध्यापन, ध्यान-धारणा, सेवा-कर्मयोग करता रहा। उन दिनों मैं बिलकुल ही आकांक्षा नहीं रखता था। उन दिनों भी मैंने बहुत काम किया। पर जब मुझसे पूछा जाता कि "क्यों काम करते हो?" तो मैं यही कहता कि "यह नहीं जानता कि मैं क्यों काम करता हूँ?" श्वासोच्छ्वास की तरह मैं कुछ काम कर रहा हूँ, इसका मुझे आभास ही नहीं होता। क्योंकि उस समय उस काम में मुझे आकांक्षा, वासना नहीं थी। मैं स्वाभाविक ही काम करता था। दुनियाभर में काम तो चलते ही थे, लेकिन उस जमाने में मुझे किसी काम का आकर्षण नहीं होता था। अपने स्थान पर मैं अपना काम करता और रात में शांति से सो जाता था।

अब बहुत बड़ी आकांक्षा

अब, जब बापू की मृत्यु के बाद मैंने घूमना शुरू किया तो बहुत बड़ी आकांक्षा रखता हूँ। ये दोनों चीजें मैं कर सकता हूँ, पर इनके बीच की चीज नहीं कर सकता। क्योंकि अल्प आकांक्षा मनुष्य को पतित करती है, ऐसा मैं मानता हूँ। अभी मैं सिंधियों के सामने बोल रहा हूँ। मेरी आकांक्षा है कि हर सिंधी भाई भारत का सेवक बने। केवल सिंधी न रहे, भारतीय बने। इसके लिए सभी सिंधी भाई एक हो जायँ तो एक बहुत बड़ी बात बनेगी। सारी कौम एक हो जाने पर वे भारत की सेवा कर सकेंगे और दुनिया की भी सेवा हो जायगी। इसलिए सभी सिंधी भारतमय बनें और दुनिया की सेवा करें। वे यदि सिंधमय बनेंगे तो भारत की सेवा के लिए संकुचित बन जायँगे। हमें व्यापक बनकर भारत और दुनिया की सेवा करनी है।

छोटी जमात भी एकरस होने पर बलशाली

सिंधी यह एक साहित्य की जबान है। आज साहित्य-प्रचार की बात चल रही थी। मैंने कहा कि हमारे साहित्य में जितना खर्च सिंधी साहित्य का हुआ है। उतना और किसीका नहीं। दस साल सिंधियों में हजारों रुपयों का साहित्य गया है। ऐसा प्रचार न महाराष्ट्र में हुआ, न तमिलनाड में और न गुजरात में। इसका कारण यही है कि यह एक छोटी-सी जमात है और छोटी जमात में बहुत काम होता है। इस तरह अगर इस कच्छ के थोड़े-से सिंधी और सारे हिन्दुस्तान के भी सिंधी एकरस हो जायँगे तो छोटी जमात होने पर भी वह बहुत बड़ी शक्ति पैदा कर सकते हैं।

अभी मुझे एक भाई ने इजराइल की बात सुनायी। बहुत सुन्दर प्रदेश है। उन लोगों ने बहुत सुन्दर काम किया है। फिलस्तीन में यहूदी लोग थे। उन लोगों की भी एक छोटी-सी जमात है। फिर भी वे बहुत काम करते हैं, सेवा करते हैं। एक छोटी-सी जमात होने पर भी सेवा के कारण, काम के कारण उसमें ताकत आ गयी है। जैनों की भी छोटी जमात है, किन्तु वे लोग भी बहुत ताकतवर हैं, क्योंकि वे एकरस होकर काम करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि आपको इस तरह छोटी जमात बनना है, आपको बहुत व्यापक बनना है। किन्तु अभी आप एक छोटी जमात हैं और एकरूप हो जाते हैं तो काम हो सकता है।

घर-घर सर्वोदय-विचार पैठने पर ही समाधान

मेरा समाधान तब तक नहीं होगा, जब तक कच्छ के सिंधियों के हर घर में सर्वोदय-विचार न पैठे। हर घर में सर्वोदय-विचार पहुँचेगा, तभी हमारा समाधान होगा। दुखायलजी से मैंने कहा है कि गीता-प्रवचन और सर्वोदय-साहित्य दस लाख के पास पहुँचना चाहिए। उसके लिए कम-से-कम एक लाख रुपयों का प्रकाशन चाहिए। दस-बीस लोग ऐसे निकलने चाहिए, जो हमेशा इसी काम में लगे रहें। तभी सिंधी साहित्य के प्रकाशन और प्रचार का काम अच्छा हो सकेगा। आपके सामने तेजूभाई की मिशाल है ही। तीन साल से इनका काम चल ही रहा है। अब तक जितना साहित्य खपा, उसमें आधा काम तो उन्होंने ही किया। तीन साल तक वे अकेले ही घूमे, फिर भी बहुत काम किया। जब मनुष्य सब कुछ छोड़कर निकलता है तो वह बहुत कर सकता है। [चालू]

अनुक्रम

१. हमारी काशी विश्वनाथ यात्रा
धगवाल १९ सितंबर'५९ पृष्ठ ८६१
२. सिन्धी भारत में विश्वमानुषता का अवतार करें
गांधीधाम २८ नवम्बर '५८ „ ८६२
३. धर्मपरायण लोग भूदान-ग्रामदान कार्य में कूद पड़ें
नीचीमांडल ५ दिसंबर '५८ „ ८६५
४. सौराष्ट्र में "तालुका-दान" से ही शुरुआत हो
कडियाणा ६ दिसंबर '५८ „ ८६७
५. विज्ञान-वृद्धि से भोगवृद्धि और भोगवासना का क्षय
आदिपुर ३० नवंबर '५८ „ ८६९
६. कार्यकर्ताओं के लिए तीन सुझाव
आदिपुर कच्छ ३० नवम्बर '५८ „ ८७२

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१
तार : 'सर्व-सेवा', वाराणसी।